* बच्चे तथा बचपन : सामाजिक, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक समझ →

बच्चे, बचपन और सामाजिकरण की पूर्ण संकल्पना समय तथा स्थान के अनुसार निरन्तर विकसित होती रही है। प्रत्येक परिवार, समुदाय एवं समाज, बच्चे तथा बचपन एवं उनके समाजीकरण को भिन्न भिन्न नजरियों से देखते हैं तथा विभिन्न तरीकों एवं साधनों से उनके विकास की व्यवस्था की गई एक नियामक और अपरिहार्य इकाई है। बचपन मात्र जैविक निर्मिति ही नहीं होता, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक एवं राजनैतिक निर्मिति भी होता है। समाज अपनी विभिन्न गतिविधियों एवं प्रक्रियाओं के माध्यम से व्यक्तियों के समाजीकरण की व्यवस्था करता है। आधुनिक सामाजिक व्यवस्था में बचपन एवं विद्यालय आदि की भूमिका में सामाजिकरण के व्यवस्थापन एवं नियमन में माता-पिता, परिवार, पड़ोस, समुदाय, मीडिया तथा विद्यालय आदि सभी भूमिका महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

बच्चा एक सामाजिक-सांस्कृतिक इकाई होता है। हर सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में बच्चे एवं बचपन को अलग-अलग नजरिए से देखा जाता है। हर जाति धर्म व परंपरा में बच्चे तथा बचपन की समझ अलग-अलग है। जाति, धर्म, आर्थिक व सामाजिक दशा आदि बच्चे व बचपन को देखने के हमारे नजरिए को प्रभावित करते हैं। अभिजात्य वर्ग के बच्चों का पालन-पोषण अधिक प्यार एवं सुरक्षा के माहौल में होता है। बच्चों के देखभाल के लिए वांछित सुख-सुविधाएँ उपलब्ध करायी जाती हैं। बच्चों को जातीय संस्कारों एवं सामाजिक संबंधों को सिखाया जाता है। इनमें यह भी जानना जरूरी है कि बच्चा लड़का है या लड़की। दोनों के लालन पालन में बहुत अन्तर है। आज भी लोग लड़कियों की अपेक्षा लड़कों का बेहतर तरीके से लालन-पालन करते हैं।

बचपन की ऐतिहासिक समझ यह बताती है कि विश्व की कई प्राचीन सभ्यताओं में भी बाल्यावस्था और किशोरावस्था

Scanned by CamScanner

Scanned with CamScanner

के बीच के समय को बचपन माना जाता है। प्रसिद्ध इतिहासकार फिलिप एरीज के अनुसार प्राचीन मानवीय समाजों में बच्चे को एक स्वतंत्र सामाजिक मानवशास्त्रीय श्रेणी में नहीं रखा जाता था। मध्यकालीन समाज जहाँ एक ओर प्रायः बच्चों में उनके पिता या अभिभावक के नियंत्रण एवं सत्ता के अधीन रखने के पक्ष में था। वहीं दूसरी ओर पारस्परिक भारतीय दृष्टिकोण बच्चों को दया, करुणा, अहिंसा इत्यादि का अधिकारी मानते हुए उनमें आत्मानुशासन, आज्ञाकारिता, निश्चलता इत्यादि गुणों को आवश्यक मानता है।

* समाजीकरण की समस्या अवधारणा, कारक तथा विविध संदर्भ :-

बच्चा समाज में जन्म लेता है और जन्म से ही वह सामाजिक विश्व का अंग बन जाता है। इस सामाजिक विश्व में परिवार, मित्र-समूह समुदाय आदि सभी शामिल हैं। इन सभी के साथ बच्चा ऐसे अर्थसंबंधों का ताना-बाना बनता है जो जीवन पर्यंत चलता रहता है। बच्चा जैसे-जैसे बढ़ता है, उसके सामाजिक संसार का फैलाव होता जाता है। वह घर में विद्यालय जाता है। विद्यालय से कार्य स्थल और फिर राष्ट्र निर्माण में योगदान देता है। जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता है। वह अपने परिवेश, विशेषरूप से अपने परिवार, समुदाय विद्यालय, मित्र-समूह व अन्य संचार माध्यमों से निरंतर सीखता रहता है और संकेंद्रित व्यवहार व विश्वास निर्मित व पुनर्निर्मित करते रहता है। इन्हीं में वह अपने जीवन को ढालने लगता है। हर समाज अपने तरह लोग चाहता है। इसके लिए परिवार जाति समूह, धर्म जैसी न जाने कितनी ही संस्थाएँ और प्रक्रियाएँ में बच्चे बड़े होते हैं। विभिन्न सामाजिक और आर्थिक परिवेश में पलने वाले बच्चों की प्रकृति भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है।

Scanned by CamScanner

Scanned with CamScanner

समाजीकरण वह अन्तः क्रियात्मक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपने समूह के मूल्य, विश्वास, मनोवृत्ति, मानदण्ड और भाषिक विशेषताएँ अर्जित करता है। इन सांस्कृतिक तत्वों को अर्जित करने के दौरान व्यक्ति की अपनी पहचान और व्यक्तित्व का निर्माण होता है। समाजीकरण मूलतः सदस्यों द्वारा सदस्यों द्वारा समाज के तरीके सीखने की प्रक्रिया है। इसका अभिप्राय यह है कि बच्चा संस्कृति के तत्वों को आत्मसात कर अपने व्यवहार को सामाजिक मान्यताओं के अनुरूप परिमार्जित कर समाज का सदस्य बनता है।

कुछ समाजशास्त्री समाजीकरण को स्व-अवधारणा के निर्माण के रूप में देखते हैं। आत्मीय और पारस्परिक संबंधों के संदर्भ में स्व और पहचान के विकास को समाजीकरण का केन्द्रीय अंग समझा जाता है। शिक्षक के रूप में हमारा बच्चों के साथ गहरा संबंध होता है इसलिए हमें समाजीकरण की उस प्रक्रिया को समझने की आवश्यकता है जो बढ़ते बच्चों पर प्रभाव डालती है। व्यक्तियों में विचार प्रक्रियाएँ समाजीकरण के दौरान विकसित होती हैं। अतः समाजीकरण वह तरीका है, जिसमें ज्ञान एक पीढ़ि से लगातार पीढ़ी को समर्पित किया जाता है। सामाजिक निरंतरता एवं एकता के लिए समाज द्वारा स्वीकृत या निर्धारित मानदण्डों मूल्यों और नियमों का अनुपालन आवश्यक है। सामाजिक रीति - रिवाज, धार्मिक अनुष्ठान, सामाजिक समारोह के रूप में परंपराएँ आदि वे तरीके हैं, जिनमें समूह एक - दूसरे के साथ जुड़े होते हैं। विवाह, जन्म और मृत्यु आयोजनों एवं धार्मिक उत्सवों जैसे अवसरों पर सामूहिक सहभागिता इसके उदाहरण हैं।

Scanned by CamScanner

Scanned with CamScanner

* बच्चों का समाजीकरण : माता - पिता, परिवार, पड़ोस, जेण्डर एवं समुदाय की भूमिका ⇒

समाजीकरण करने वाली संस्था के रूप में माँ-बाप का महत्व वास्तव में असाधारण है। यह कहा जाता है कि माँ के त्याग और पिता की सुरक्षा में रहते हुए बच्चा जो कुछ सीखता है, वह उसके जीवन की स्थायी पूँजी होती है। परिवार या घर को सभी समाजिक गुणों का उद्गम स्थल माना गया है। यह प्रथम समाजिक इकाई होती है। बच्चा सबसे पहले परिवार में जन्म लेकर परिवार का सदस्य बनता है। उसका सबसे घनिष्ठ सम्बन्ध अपनी माँ से होता है। माँ उसे दूध पिलाती है और तरह-2 से उसकी रक्षा करती है। बच्चे को नियमित रूप से खाने-पीने की, पहनने की तथा रहने की सीख मिलती है। माँ और बाप से बच्चे की अधिकतर आवश्यकताएँ पूरी होती हैं साथ ही बच्चा यह सीखता है कि कुछ कार्यों को करने पर माँ या पिता उसे प्यार करते हैं, उसकी प्रशंसा करते हैं और कुछ कार्यों के करने से उसे दण्ड मिलता है। उसकी निन्दा होती है। माँ अपने बच्चे को प्यार करती है, परिवार के अन्य लोग भी उसे प्यार करते हैं। वे उसके साथ हँसते-बोलते हैं।

परिवार में प्रायः एक से अधिक सदस्य होते हैं इनमें से प्रत्येक के अलग-अलग मिजाज, रुचि, व्यवहार के तरीके, भावनाएँ आदि होती हैं फिर भी इनमें से प्रत्येक के साथ बच्चे को घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करना होता है, क्योंकि परिवार के एक छोटे-से दायरे में उसे हरदम रहना पड़ता है।

परिवार में रहकर ही बच्चा माँ-बाप से समाजिक उत्तरदायित्व का अर्थ, क्षमा का महत्व और सहयोग की आवश्यकता सीखता है और अपनी मौलिक धारणाओं, आदर्शों और शैली की रचना करता है।

Scanned by CamScanner

* बाल अधिकारों का संदर्भ :-

बच्चे एवं बचपन की अवधारणा में आमूलचूक परिवर्तन इस दिशा में भी हुआ कि बच्चे के लिए व्यस्कों द्वारा किए जाने वाले सभी 'बाल कल्याण' की परिभाषा में आते थे। बच्चों के हक के रूप में परिभाषित करते हुए, उनकी संवैधानिक जवाबदेही सुनिश्चित की गई है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 'ए' एवं अनुच्छेद 45 में बच्चों के लिए 14 वर्ष तक की आयु को संज्ञान लिया गया है। बाल श्रम निषेध एवं नियमन कानून 1986 '14 वर्ष की उम्र तक के व्यक्ति को बच्चे की श्रेणी में रखता है वही दूसरी ओर बागानी कृषि कानून 1954 बचपन की अवस्था को 18 वर्ष तक मानता है। समाज ही बच्चों के प्रति संवेदनशीलता व दया तो झलकती है। बच्चों का महत्व व्यस्कों के समान नहीं है। क्योंकि अधिकार सिर्फ व्यस्कों का ही होता है कि बच्चों का नहीं। यदि गौर से देखें बच्चों के हितों को अत्यधिक नुकसान पहुँचाने वाली प्रथाएँ सामाजिक परंपराओं और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का हिस्सा होती हैं। और पीढ़ी विद्यमान रहती है।

जन्म से पूर्व गर्भावस्था तथा जन्म के 18 वर्षों तक बच्चे अपने से बड़ों के संरक्षण में रह कर अपना जीवन - यापन करते हैं। सभी बच्चे को अपने बचपन की मूलभूत सुविधा और अधिकार प्राप्त हो, उन्हें स्वाधीनता, न्याय व शान्तिमय माहौल मिले, ताकि आगे की सामाजिक प्रगति और जीवन को बेहतर बनाने का उन्हें उम्दा अवसर मिल सके।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानवाधिकारों की विश्वव्यापी घोषणा की है तथा सभी सहमति व्यक्त की हैं कि "हर व्यक्ति को जाति, वर्ण, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीतिक सम्पत्ति आदि जैसे भेदभाव के बिना प्रदत्त अधिकार और स्वाधीनताएँ प्राप्त हैं।

Scanned by CamScanner

Scanned with CamScanner

बाल अधिकार भी प्रमुख है:-

(1.) जीने का अधिकार
(2.) विकास का अधिकार
(3.) संरक्षण का अधिकार
(4.) सहभागिता का अधिकार

भारत के संविधान के प्रमुख बाल अधिकार:-

(1.) राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग
(2.) बाल कल्याण समिति
(3.) शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009
(4.)

Scanned by CamScanner

Scanned with CamScanner